प्रज्ञा और बुद्धि

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

बुद्धि स्थूल शरीर से जुड़ी है। इन्द्रियों के द्वारा बाह्य वस्तुओं का ज्ञान होता है। जब मन इन्द्रियों से जुड़ता है तो वह सामग्री लेकर बुद्धि को प्रदान करता है। बुद्धि निश्चय करती है। मन भूत, वर्तमान और भविष्य का चिंतन करता है। बुद्धि निर्णायक का कार्य करती है। बुद्धि चित्त से जुड़ती है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। स्थूल जगत् का मालिक चित्त है। चित्त चेतना की शक्ति है। बाकी सारे जड़ हैं। शरीर मिश्र चेतन है। मन, वचन और काया की प्रवृत्ति करणवीर्य है। चेतना की शक्ति लब्धिवीर्य है। चेतन तत्व आत्मा है बाकी सब जड़ हैं। चेतना के बिना सभी तत्व व्यर्थ हैं। शरीर आत्मा से संचालित है। चेतना के न रहने पर शरीर जड़ हो जाता है।

प्रज्ञा आत्मा से जुड़ी है। ज्ञान होने से या ज्ञानी पुरुष के संसर्ग से प्रज्ञा जागृत होती है। आत्मा सभी जीवों में है। कर्मों के प्रभाव के कारण आत्मा दिखलाई नहीं पड़ती। जीवात्मा शरीर के कारण बद्ध रहती है। मैं और मेरे तक सीमित रहती है। चेतना के ऊर्ध्वरोहण से बुद्धि भाव सत्ता से प्रज्ञा के रूप में आ जाती है। आत्मा का मूल स्वभाव ज्ञाता द्रष्टा भाव है। प्रज्ञा बुद्धि से परे है। प्रज्ञा अतेन्द्रिय है। प्रज्ञा आत्मा से जुड़ी है। यह अवचेतन मन में निवास करती है। वहां शुद्धिकरण होता है। अवचेतन मन भण्डार के समान है।

प्रज्ञावान व्यक्ति स्थितप्रज्ञ होता है। स्थितप्रज्ञ वह है जिसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो जाती है। गीता में स्थितप्रज्ञ का विस्तार से वर्णन है। स्थितप्रज्ञ वह होता है जो सभी प्रकार के द्वन्दों से परे होता है। ऐसे व्यक्ति को सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय प्रभावित नहीं करते। स्थितप्रज्ञ सभी परिस्थितियों में समान रहता है। प्रज्ञाचक्षु वह व्यक्ति होता है जिसके ज्ञान नेत्र खुले रहते हैं। मानव के पास दो नेत्र हैं ये नेत्र सामान्य नेत्र हैं। यह राग–द्वेष के नेत्र हैं। इन नेत्रों से अच्छाई, बुराई, जगत की घटनाएं देखी जाती हैं। जिन व्यक्तियों के प्रति आसक्ति होती है

उनके प्रति हमारा राग रहता है। जिन व्यक्तियों के प्रति आसक्ति नहीं होती उनके प्रति द्वेष होता है। स्थितप्रज्ञ या प्रज्ञाचक्षु सांसारिक द्वन्दों से परे होता है। संसार की घटनाएं उसे प्रभावित नहीं करती। ऐसा व्यक्ति आत्म प्रतिष्ठित होता है।

स्थितप्रज्ञ समदर्शी होता है। सभी जीवों में आत्मदर्शन करता है। उसकी प्रज्ञा समता भाव में प्रतिष्ठित रहती है। समता भाव शांति की अवस्था है। कषाय का न रहना समता भाव है। मध्यस्थ भाव रखना समता है। सुख दुःख में समान रहना, एक स्थिति में समता भाव है। गीता में इसे स्थितिप्रज्ञ कहा गया है। प्रियता और अप्रियता में समभाव रखना चाहिए। यह एक उत्तम गुण है। राग–द्वेष में रहना अशांति को जन्म देना है। शांति आत्मा का गुण है। शांति हमें प्रिय है। राग–द्वेष बाहर से आरोपित भाव हैं। सोने से मिट्टी को अलग कर देने पर सोना चमकने लगता है। इसी प्रकार मानव में शांति आ जाने पर उसका चरित्र भी चमकने लगता है। यह अवस्था आत्मा की अपनी स्वाभाविक अवस्था है।

कारण और कार्य के अनुसार सृष्टि चलती है। यदि बुरा कर्म किया जाता हैं तो फल के रूप में भी बुराई ही प्राप्त होती है और यदि अच्छा कार्य किया जाता है तो भलाई प्राप्त होती है। अच्छा और बुरा कर्म करना मानव के अपने अधीम है। समता, सहअस्तित्व, शांति, सहनशीलता अच्छे गुण हैं। सहनशीलता मानव का सबसे बड़ा गुण है। जिस मानव के अंदर यह गुण रहता है वह महान कहलाता है। जो व्यक्ति जितना सहन करके चलता है उसका चरित्र उतना ही ऊंचा होता है। चरित्र वह हीरा है जो टूटकर जुड़ता नहीं।

चरित्र निर्माण मानव की स्वाधीन प्रक्रिया है। चरित्र निर्माण के संबंध में पहली आवश्यकता है व्यक्ति अपनी आत्म–शक्ति को पहचाने। अपने आप में एक अनंत शक्ति का स्रोत निरंतर प्रवाहित है, इस ध्रुव सत्य को आत्मसात कर लिया जाए। ध्यान धारणा द्वारा अपने–आपको अंतर पुष्ट करने की एक प्रबल आवश्यकता है। सहनशीलता का अपने आप में अनुभव एक ऐसी जबर्दस्त प्रक्रिया है कि वह जीवन के प्रति समस्त दृष्टिकोण को बदल देती है। एक जगह जन्म लेने और पनपने वाले व्यक्तियों में भी बड़ा भारी अंतर पाया जाता है। एक शेर की तरह जीता है और दूसरा गीदड़ की तरह दबा–दबा रहता है। आखिर यह अंतर क्यों? विभिन्न जीवन धाराओं का गहराई तक अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि विभिन्न

जीवन प्रक्रियाओं की मौलिक असमानता का कारण क्षेत्र, वातावरण, खान, पान, पहनावा मूल नहीं होकर मौलिक कारण आत्म–शक्ति का प्रकाट्य संबंधी अंतर है। सत्य और न्याय आत्म स्वीकृत तत्व हैं और उसके प्रत्येक स्फुरण में वे ही जगमगाते हैं। अंधकार और अनुचित के लिए वहां कोई अवकाश नहीं। जिधर निकलता है एक नई लहर, एक नया तेज स्फुरित हो जाता है। वह भी एक जीवन होता है किन्तु जगमगाता हुआ।

मानव जीवन समता और सहिष्णुता का जीवन है। भौतिक सुख–दुःख का मानव–जीवन में कोई स्थान नहीं। उसकी सम्पूर्ण चर्या आध्यात्मिक गुणों से परिपूर्ण होती है। जिसने संयम के मार्ग को स्वीकार कर लिया है, उसके जीवन में कठोर और मृदु संवेदनों का आना आवश्यक है। संयम के कठोर मार्ग पर चलने वाले साधक के जीवन में परीषहों का आना स्वाभाविक है, क्योंकि साधक का जीवन चारित्र की मर्यादाओं से बधा है। मर्यादाओं के पालन से मानव जीवन की सुरक्षा होती है।